प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय :

''शिक्षा से तात्पर्य और वर्तमान भारतीय शिक्षा जगत का प्रारूप एक आकलन''

अनुक्रमणिका

1.1 **शिक्षा का शाब्दिक अर्थ**

1.2 **शिक्षा का शब्दकोशीय अर्थ**

1.3 **शिक्षा का संकुचित अर्थ**

1.4 **शिक्षा का व्यापक अर्थ**

1.5 **शिक्षा के संदर्भ में भारतीय विद्वानों के मत**

1.5.1 **डॉ. राधाकृष्णन**

1.5.1.1 शिक्षा और वसुधैव कुटुंबकम्

1.5.1.2 नैतिकता

1.5.1.3 शिक्षा और अध्यात्मिकता

1.5.1.4 शिक्षा में जनतांत्रिक पद्धति

1.5.1.5 धार्मिक शिक्षा

निष्कर्ष

1.5.2 **स्वामी विवेकानंद**

1.5.2.1 शिक्षा के उद्देश्य

1.5.2.2 गुरुकुल प्रणाली में विश्वास

1.5.2.3 व्यवसायिक शिक्षा

1.5.2.4 नारी-शिक्षा

1.5.2.5 धार्मिक शिक्षा

1.5.2.6 जन शिक्षा

1.5.2.7 शिक्षकों के प्रति

1.5.2.8 शिक्षकों के कार्य

1.5.2.9 विद्यार्थियों के प्रति

1.5.2.10 मन की एकाग्रता

निष्कर्ष

1.5.3 **महात्मा गांधी**

1.5.3.1 शिक्षा के उद्देश्य

1.5.3.1.1 तात्कालीक उद्देश्य

1.5.3.1.1.1 जीविकोपार्जन

1.5.3.1.1.2 सांस्कृतिक उद्देश्य

1.5.3.1.1.3 बहुमुखी विकास

1.5.3.1.1.4 चरित्र-निर्माण

1.5.3.1.1.5 मुक्ति

1.5.3.1.2 शिक्षा का सर्वोच्य उद्देश्य

1.5.3.1.3 बुनियादी शिक्षा पद्धति

1.5.3.1.3.1 सात वर्षों तक बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा

1.5.3.1.3.2 मातृभाषा द्वारा शिक्षा

1.5.3.1.3.3 किसी मूल उद्योग के आधार पर शिक्षा

1.5.3.1.3.4 समवायी शिक्षा

1.5.3.1.3.5 स्वावलंबी शिक्षा

1.5.3.1.4 बुनियादी शिक्षा पद्धति में शिक्षक

1.5.3.1.5 बुनियादी शिक्षा पद्धति में विद्यालय का रूप

निष्कर्ष

1.5.4 **महामना मदनमोहन मालवीय**

1.5.4.1 शिक्षा का लक्ष्य

1.5.4.1.1 आदर्श मानव का निर्माण

1.5.4.1.2 राष्ट्रीय शिक्षा

1.5.4.1.3 नैतिक शिक्षा

1.5.4.1.4 शारीरिक शिक्षा

1.5.4.1.5 प्राचीन शिक्षा का प्रसार

1.5.4.1.6 स्त्री शिक्षा

1.5.4.1.7 शिक्षा का माध्यम

1.5.4.2 धार्मिक शिक्षा

1.5.4.3 विद्यार्थियों के प्रति

निष्कर्ष

1.5.5 **स्वामी दयानंद सरस्वती**

1.5.5.1 वैदिक शिक्षा पर बल

1.5.5.2 चरित्र-निर्माण

1.5.5.3 सादा जीवन उच्च विचार

1.5.5.4 गुरूकुल प्रणाली का समर्थन

1.5.5.5 अध्ययन की व्यवस्था

1.5.5.6 सह-शिक्षा

1.5.5.7 शरीर स्वस्थ

निष्कर्ष

1.5.6 **रवींद्रनाथ ठाकुर**

1.5.6.1 शिक्षा के उद्देश्य

1.5.6.2 चरित्र निर्माण

1.5.6.3 प्रकृति में शिक्षा

1.5.6.4 धार्मिक शिक्षा

1.5.6.5 स्वावलंबी शिक्षा

1.5.6.6 मातृभाषा द्वारा शिक्षा

1.5.6.7 शिक्षकों के प्रति

निष्कर्ष

1.6 **वर्तमान भारतीय शिक्षा नीति का स्वरूप**

निष्कर्ष

प्रथम अध्याय

''शिक्षा से तात्पर्य और वर्तमान भारतीय शिक्षा जगत का प्रारूप एक आकलन''

प्रस्तावना :

शिक्षा मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली अखंड प्रक्रिया है । प्रत्येक मनुष्य इस प्रक्रिया से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा रहता है । शिक्षा एक साधन है । मनुष्य इस साधन के माध्यम से अपने विविध लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है । आज शिक्षा के पारंपारिक साधनों का स्थान आधुनिक साधनों ने ले लिया है । आज शिक्षा के मानदंड़ भी बदल चुके हैं । अर्थात आधुनिक युग में जिसे कम्प्युटर का ज्ञान नहीं है उसे अज्ञानी माना जाता है । शिक्षा के शाब्दिक, शब्दकोशीय, संकुचित एवं व्यापक अर्थ इस प्रकार हैं -

1.1 शिक्षा का शाब्दिक अर्थ :

एन. आर. स्वरूप सक्सैना के अनुसार शिक्षा के शाब्दिक अर्थ इस प्रकार हैं - ''शिक्षा को आंग्ल भाषा में 'एजूकेशन' Education कहते हैं । शिक्षा शास्त्रियों का मत है कि 'एजूकेशन' की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के निम्नलिखित शब्दों से हुई है

(i) एडूकेटम (Educatum) अर्थात To, Train, act of teaching or training (शिक्षित करना)

(ii) एडूसीयर (Educere) अर्थात To Lead out (विकसित करना अथवा निकालना)

(iii) एडूकेयर (Educare) अर्थात To educate, to bring up, to raise (आगे बढ़ाना, बाहर निकलना अथवा विकसित करना)'एडूकेटम (Educatum) शब्द में ए (E) का अर्थ है अंदर से तथा 'डूको' (Duco) का अर्थ है आगे बढ़ाना अथवा विकास अर्थात अंदर से विकास । अंदर का विकास अर्थात प्रत्येक बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास । इस प्रकार शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है बालक की जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास ।''[1]

1.2 शिक्षा का शब्दकोशीय अर्थ :

(1) हिंदी विश्वकोश भाग - 23 में शिक्षा का अर्थ इस प्रकार है - ''शिक्षा - किसी विद्याको सीखने या सिखाने की क्रिया, पढ़ने पढ़ाने की क्रिया, सीख, तालिम ।''[2]

---

1. एन. आर. स्वरूप सक्सैना - शिक्षा का समाजशास्त्रीय आधार पृ. 4
2. (संपा) नगेंद्रनाथ वसु - हिंदी विश्वकोश भाग - 23 पृ. 20

(2) डॉर्लिंग किडर्सले के अनुसार शिक्षा का अर्थ - "Education - Systematic instruction, a perticular kind of or stage in education" [3]

(3) डॉ. रॉनी कॅथे के अनुसार शिक्षा का अर्थ इस प्रकार है - ''Education - Education the imparting and of knowledge through teaching and learning especially at school or similar institution" [4]

1.3 शिक्षा का संकुचित अर्थ :

बालक का विद्यालय में जाना, साक्षर होना, परीक्षा देना, उपाधि प्राप्त करना आदि क्रियाँए शिक्षा को संकुचित अर्थ में बांध देती है । इस प्रक्रिया में शिक्षक का महत्त्व अधिक होता है । वह बालकों को निश्चित समय में निश्चित तिथि के अनुसार निश्चित विषय ही पढ़ाता है । शिक्षा के संकुचित अर्थ को स्पष्ट करते हुए जे. एस. मेकेंजी कहते हैं - ''संकुचित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय - हमारी शक्तियों के विकास और उन्नति के लिए चेतनापूर्वक किये गये किसी भी प्रयास से हो सकता है ।'' [5]

1.4 शिक्षा का व्यापक अर्थ :

शिक्षा के व्यापक अर्थ के अनुसार शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है । शिक्षा के व्यापक अर्थ के अंतर्गत बालक का बहुमुखी विकास होता है । प्रोफेसर डमविल के अनुसार ''शिक्षा के व्यापक अर्थ में वे सभी प्रभाव आते हैं, जो व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करते हैं ।'' [6] अर्थात मनुष्य अपने अनुभव से समस्याओं का सामना करता है । वह प्रत्येक समस्या से सीखता चला जाता है, कर्तव्योंका पालन करता है और जीवन सफल बनाने का प्रयास करता है ।

1.5 शिक्षा के संदर्भ में भारतीय विद्वानों के मत :

अनेक भारतीय विद्वानों ने शिक्षा के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए हैं । जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण विद्वानों के विचारों को मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

3. (Ed) Kindersley Dorling - Illustrated Oxford Dictionary, Page No. 258
4. (Ed) Dr. Kathy Roony - Encarta World English Dictionary, Page No.599
5. गुरसरनदास त्यागी - शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, पृ. 10
6. गुरसरनदास त्यागी - शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, पृ. 9

1.5.1 डॉ. राधाकृष्णन

डॉ. राधाकृष्णन स्वतंत्र भारत के दूसरे राष्ट्रपति थे । उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अनमोल योगदान दिया है । उनके शैक्षणिक विचारों पर स्वामी विवेकानंद, रवींद्रनाथ ठाकुर तथा महात्मा गांधीजी का प्रभाव है । उनके शैक्षणिक विचार निम्नांकित हैं -

1.5.1.1 शिक्षा और वसुधैव कुटुंबकम् :

डॉ. राधाकृष्णन वसुधैव कुटुंबकम् सिद्धांत पर विश्वास रखते थे । उनका मानना था कि संसार के सभी व्यक्ति एक ही परिवार के सदस्य हैं । अत: प्रत्येक व्यक्ति ने अपने-पराये की भावना को त्यागकर एक हो जाना आवश्यक है । 'वसुधैव कुटुंबकम्' का सिद्धांत शिक्षा के माध्यम से विकसित किया जा सकता है ।

1.5.1.2 नैतिकता :

डॉ. राधाकृष्णन नैतिकता को मनुष्य के सामाजिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास का आधार मानते हैं । उनका मानता था कि नैतिकता का प्रभाव मानव के कार्यकलापों पर पड़ता है । अत: सामाजिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास के लिए नैतिकता की शिक्षा पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से दी जानी चाहिए । पाठ्यपुस्तकों के साथ-साथ नैतिक शिक्षकों की भी आवश्यकता है ।

1.5.1.3 शिक्षा और आध्यात्मिकता :

डॉ. राधाकृष्णन चाहते थे कि शिक्षा के माध्यम से आध्यात्मिकता शिक्षा का प्रचलन हो । वे स्वीकार करते थे कि मानव भौतिकवाद की ओर अधिक झुक रहा है । भौतिकवाद के कारण मानवीय संवेदनाएँ खत्म हो रही है । वे चाहते थे कि जिन लोगों में त्यागशीलता, नि:स्वार्थ सेवाभावना तथा परमात्मा में आस्था है वे शिक्षा से जुड़ जाएँ । अत: आध्यात्मिक शिक्षा की वृद्धि में सहायता करें । स्वार्थहीन लोगों के कारण ही इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है ।

1.5.1.4 शिक्षा में जनतांत्रिक पद्धति :

डॉ. राधाकृष्णन बालकों के बहुमुखी विकास के लिए जनतांत्रिक पद्धति के प्रयोग को मान्यता देते थे । जनतंत्र मानव-जीवन का प्राण है । अत: जनतंत्र ही विश्वशांति के लिए अधिक उपयुक्त है । बालकों के वैयक्तिक एवं बहुमुखी विकास के लिए शिक्षण-संस्थओं का संघटन जनतंत्र के आधार पर होना चाहिए ।

1.5.1.5 धार्मिक शिक्षा :

धार्मिक शिक्षा के बारे में डॉ. राधाकृष्णन के विचार बड़े उदात्त एवं स्पष्ट हैं । वे शिक्षण-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में थे । उनका विचार था कि धार्मिक शिक्षा द्वारा भौतिक और पाशविक

प्रवृत्तियों की पूर्ण शुद्धि हो जाती है । वे धर्म का संबंध शरीर और आत्मा के संबंध के समान मानते थे । उनका मानना था कि धर्म को शिक्षा से अलग किया जाएगा तो हमारी आध्यात्मिक मृत्यु हो जाएगी ।

सन 1947 ई. स. में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की स्थापना की थी । इस आयोग ने धार्मिक शिक्षा संबंधी निम्नलिखित शिफारसें पेश की थी ।

1) सभी शिक्षा-संस्थाओं के दैनिक कार्य कुछ मिनटों के लिए मौन अंतरिक चिंतन के साथ शुरू हों ।

2) डिग्री कक्षा के प्रथम वर्ष में संसार के महान धार्मिक नेताओं की जीवनियाँ पढ़ाई जाएँ । जैसे महात्मा गांधी, गुरू नानक, महम्मद पैगंबर, बुद्ध आदि ।

3) डिग्री के दूसरे वर्ष में संसार के धर्म ग्रंथों से सर्वोपयुक्त सामग्रियाँ चुनकर पढ़ायी जाएँ ।

4) डिग्री के तीसरे वर्ष में धर्म-दर्शन की प्रमुख समस्याओं पर विचार किया जाए ।

निष्कर्ष :

डॉ. राधाकृष्णन के शैक्षणिक-विचार व्यापक हैं । वे वसुधैव कुटुंबकम् सिद्धांत का प्रचार-प्रसार शिक्षा के माध्यम से करना चाहते थे । धार्मिक शिक्षा के पक्ष में वे इसलिए थे कि हमारे धार्मिक संकीर्ण मतभेदों का अंत होगा । इन मतभेदों को दूर कर सच्चे मानवता धर्म का पालन कर सकें । अत: इसी कारण विश्वबंधुत्व की भावना में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हो सकेगी ।

1.5.2 स्वामी विवेकानंद (1863-1902)

स्वामी विवेकानंद भारतीय संस्कृति के पोषक थे । उन्होंने भारतीय संस्कृति का प्रचार और प्रसार केवल भारत में ही नहीं किया बल्कि विदेश में भी किया था । शिकागो धर्म सम्मेलन में उनके महान् व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा सारे विश्व में फैल गई । स्वामीजी ने किसी शिक्षाशास्त्र की रचना नहीं की है । अखंड ब्रह्मचर्य की कठोर साधना और अनुभव के आधार पर शिक्षा के संबंध में अपने मौलिक विचारों को प्रतिपादित किया है । इनके शैक्षणिक विचारों की देन अनमोल है । स्वामीजी के शब्दों में ''सारी शिक्षा और समस्त प्रशिक्षण का एकमेव उद्देश्य 'मनुष्य' का निर्माण होना चाहिए ।'' [7]

1.5.2.1 शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार बताये हैं -

1. देश-प्रेम की प्रेरणा देने वाला पाठ्यक्रम होना चाहिए ।
2. मानव की प्राथमिक आश्यकताओं की पूर्ति करने वाली शिक्षा हो ।

---

7 . हरिराम जसटा : आधुनिक भारत में शैक्षिक चिंतन, पृ. 12

3. शिक्षा द्‌वारा मानसिक, शारीरिक, भावात्मक, धार्मिक, नैतिक और सामाजिक विकास होना चाहिए ।

4. व्यवसायिक शिक्षा का प्रयोजन होना चाहिए ।

5. शिक्षा द्‌वारा आत्मविश्वास, आत्म-श्रद्‌धा, आत्म-त्याग, आत्म-नियंत्रण, आत्म-निर्भरता और आत्म-ज्ञान जैसे अलौकिक सद्‌गुणों का विकास होना चाहिए ।

6. शिक्षा द्‌वारा राष्ट्र, गुरू और शुद्‌ध आदर्श के प्रति श्रद्‌धा और चेतना जागृत होनी चाहिए ।

1.5.2.2 गुरूकुल प्रणाली में विश्वास

स्वामीजी को प्रचलित शिक्षा व्यवस्था पर विश्वास नहीं था । उनका मानना था कि इस शिक्षा से केवल बाबुओं का निर्माण होता है । रवींद्रनाथ ठाकुर के समान वे भी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर विश्वास करते थे । उनके अनुसार गुरुकुल ही एक ऐसा स्थान है जहाँ शिक्षक मुक्तहस्त से शिक्षा दे सकते हैं । गुरुकुल में पैसों का महत्त्व नहीं है बल्कि स्वावलंबन, विद्‌याज्ञान और चरित्र को अधिक महत्त्व है । वहाँ अपना-पराया, जाति-पाँति के भेद मिटकर विश्वबंधुत्त्व की भावना विकसित होती है । इसलिए वे गुरुकुल प्रणाली अपनाने पर बल देते थे ।

1.5.2.3 व्यवसायिक शिक्षा

स्वामीजी व्यवसायिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे । उनका मानना था कि जो शिक्षा मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकती वह व्यर्थ है । स्वामीजी व्यवसायिक शिक्षा के बारे में कहते हैं "हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है, जिसके द्‌वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्‌धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होता है ।"[8] अर्थात वे सैद्‌धांतिक या पुस्तकीय शिक्षा की उपेक्षा करते थे और व्यवहारिक शिक्षा पर बल देते थे ।

1.5.2.4 नारी - शिक्षा

स्वामीजी का मानना था कि नारी-शिक्षा के अभाव में देश की उन्नति असंभव है । वे देश के पतन के अनेक कारणों में से एक नारी-शिक्षा का अभाव एक कारण मानते हैं । स्वामीजी के शब्दों में "पहले स्त्रियों को शिक्षित करो, तब वे आपको बताएँगी की उनके लिए कौन सा सुधार आवश्यक है ।"[9] शिक्षा के कारण ही नारी आत्म-निर्भर बन सकती है । वह आत्म-निर्भर बनने के पश्चात् ही अपनी समस्याओं का समाधान खुद करेगी इसमें संदेह नहीं । स्वामीजी का मानना था कि जिस देश में स्त्रियों का आदर नहीं किया जाता वह देश महानता नहीं प्राप्त कर सकता । स्वामीजी नारी-शिक्षा के समर्थक थे किंतु सह-शिक्षा के विरोधी थे । लड़कियों का

---

8. हरिराम जसटा - आधुनिक भारत में शैक्षिक चिंतन पृ. 13
9. हरिराम जसटा - आधुनिक भारत में शैक्षिक चिंतन पृ. 19

थिएटर, ड्रामाआदि देखना अथवा सक्रीय भाग लेना उन्हें अस्वीकार था । पंद्रह वर्ष के पूर्व विवाह करना भी उन्हें अस्वीकार था ।

1.5.2.5 धार्मिक - शिक्षा

प्राचीन काल में धर्म ही शिक्षा का मूलाधार था क्योंकि धर्म ही अनादि सत्यों का संचित कोश है । स्वामीजी को विश्वास था कि धार्मिक-शिक्षा पुस्तकों के माध्यम से नहीं दी जा सकती । वह सिर्फ आचरण के माध्यम से ही दी जा सकती है । वे चाहते थे कि धार्मिक शिक्षा द्‌वारा विश्वबंधुत्त्व की भावना विकसित हो । विश्व के समस्त महापुरुषों और संतों के जीवन-चरित के अध्ययन-अध्यापन से धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है । धार्मिक शिक्षा के कारण ही मनुष्य अच्छाई और बुराई में अंतर कर सकेगा ऐसा स्वामीजी का मत था ।

1.5.2.6 जन-शिक्षा

जन-शिक्षा से स्वामीजी का तात्पर्य समाज के निम्न स्तर के लोगों की शिक्षा से है । सामान्य जनसमूह अशिक्षित होने के कारण ही भारत का अध:पतन हो रहा है । अत: जब तक ज्ञान की धारा निम्न-स्तर के लोगों के घर तक नहीं पहुँचती तब तक भारत का विकास संभव नहीं है ।

स्वामीजी के अनुसार अशिक्षित लोगों के सामने विचार रखना चाहिए । संसार में चारों ओर क्या चल रहा है इसका ज्ञान उन्हें कराना चाहिए । जब तक उनके पास हम ज्ञान की धारा नहीं ले जाते तब तक वे मुक्त नहीं होंगे । उन्हें मातृभाषा में शिक्षा देनी चाहिए ताकि वे आसानी से शिक्षा ग्रहण कर सकें । अर्थात शिक्षा के कारण ही उनका खोया हुआ आत्मविश्वास लौट आएगा । अशिक्षितों के घर में ज्ञान गंगा ले जाने की जिम्मेदारी शिक्षितों पर है । शिक्षित व्यक्ति अगर सामान्य लोगों की ओर ध्यान नहीं देता तो वह देशद्रोही है । स्वामीजी के अनुसार ''यदि हल चलाने वाले कृषक का बेटा शिक्षा प्राप्त करने नहीं आ सकता, तो क्यों नहीं हम उसे हल चलाते हुए मिल सकते ? उसके साथ छाया की भाँति चलते रहो । पुस्तक पाट बाद में होता रहेगा । उसे शब्द ही सुनने दो ।'' [10]

1.5.2.7 शिक्षकों के प्रति

शिक्षक का समाज में क्या स्थान है और शिक्षा के प्रति उनका क्या कर्तव्य है स्वामीजी के इन विचारों को निम्नांकित रूप में देख सकते हैं -

---

10 . हरिराम जसटा - आधुनिक भारत में शैक्षिक चिंतन पृ. 22

स्वामीजी शिक्षकों को चरित्र संपन्न होना आवश्यक मानते हैं क्योंकि वे उनका स्थान पिता से बढ़कर मानते हैं । शिक्षकों को शास्त्रों का, धर्मग्रंथों का मर्मज्ञ होना चाहिए । उनका जीवन खुली किताब की तरह होना चाहिए ताकि सब लोग उसे पढ़ सकें । साथ ही वे छात्रों के मार्गदर्शक, मित्र तथा परामर्शदाता होने चाहिए।

1.5.2.8 शिक्षकों के कार्य

(i) छात्रों में अध्यात्मिक शक्ति का संचार करना ।

(ii) छात्रों के साथ व्यक्तिगत और घनिष्ठ संबंध स्थापित करना ।

(iii) शिक्षक को छात्रों की प्रवृत्तियों का अध्ययन कर उनमें अपनी पूर्ण शक्ति को आत्मसात कर देना चाहिए ।

(iv) छात्रों के ज्ञान - प्राप्ति के मार्ग में उपस्थित होनेवाली सब बाधाओं को दूर करना चाहिए ।

(v) शिक्षक द्वारा छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान किए जाने चाहिए जिनसे वह अपने हाथों, पैरों, कानों, आँखों आदि का प्रयोग करके अपनी बुद्धि का विकास कर सके ।

(vi) शिक्षक को क्षणभर में अपने आपको हजारों में परिणत करने की क्षमता होनी चाहिए ।

संक्षेप में स्वामीजी की दृष्टि में शिक्षक की भूमिका जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण है । शिक्षक की जरा-सी भूल किसी के जीवन का रूख बदल सकती है । अर्थात शिक्षक ही मानव-जीवन को उचित मोड़ दे सकता है ।

1.5.2.9 विद्यार्थियों के प्रति

विवेकानंदजी ने जिस प्रकार अध्यापकों के कर्तव्य और कार्य पर विचार किया है उसी प्रकार छात्रों के कर्तव्यों पर भी विचार किया है -

(i) विद्यार्थियों को मन, वचन और कर्म से शुद्ध रहकर सत्य का पालन करना चाहिए ।

(ii) शिक्षकों के प्रति आदर का भाव रखना चाहिए ।

(iii) पाशविक प्रवृत्तियों के साथ निरंतर संघर्ष करना चाहिए ।

(iv) ज्ञान के प्रति सदा जिज्ञासा बनी रहें और उसकी पूर्ति के लिए कोशिश करते रहें ।

(v) सहनशक्ति होनी चाहिए ।

(vi) प्रत्येक विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए क्योंकि उससे श्रद्धा एवं विश्वास दृढ़ होता है ।

(vii) पाश्चात्य ज्ञान अर्जित करें किंतु सांस्कृतिक चेतना मूलत: भारतीय ही रहें ।

1.5.2.10 मन की एकाग्रता

स्वामीजी के मतानुसार वास्तविक शिक्षा की उपलब्धि में मन की एकाग्रता परम आवश्यक है । मन की एकाग्रता के कारण ही ज्ञान की महान शक्ति प्राप्त होती है । संपूर्ण जीवन की सफलता एकाग्रता पर ही आधारित है । विवेकानंदजी के मतानुसार "मैं तो मन की एकाग्रता को ही शिक्षा का यथार्थ सार समझता हूँ ।"[११]

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहा जाता है कि विवेकानंदजी का शिक्षा - दर्शन आदर्शवाद और यथार्थवाद का समन्वय है । वे भारतीय संस्कृति के समर्थक होने के कारण उस शिक्षा के माध्यम से सुरक्षित रखना चाहते हैं । उन्होंने जन-शिक्षा के विचारों को यथार्थ की पृष्ठभूमि पर रखा है । उन्होंने प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को अपेक्षित कर्तव्यों का परिचय कराया है । इतना ही नहीं वे ज्ञानधारा को सामान्य लोगों के घरों तक ले जाने को कहते हैं ।

1.5.3 महात्मा गांधी (1869-1948)

सत्य, ज्ञान एवं अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधीजी के शैक्षणिक सिद्धांत आदर्शवादी नहीं है । वे यथार्थ और अनुभव के आधार पर बताए गये हैं । डरबन, जोहान्सबर्ग, फिनिक्स आदि आश्रमों में उन्होंने शिक्षा संबंधी प्रयोग किए और उसी के आधार पर शैक्षणिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है ।

1.5.3.1 शिक्षा के उद्देश्य

गांधीजी की मान्यता है कि हमारे जीवन के दो पक्ष हैं एक भौतिक और दूसरा पारलौकिक । अत: उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य का भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद दोनों पक्षों से संबंध स्थापित किया है । उनका मानना था कि जीवन में इन दोनों की पूर्ति शिक्षा द्वारा होनी चाहिए । इसलिए उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य को दो भागों में विभाजित किया है । जैसे -

अ) तात्कालिक उद्देश्य

ब) सर्वोच्य उद्देश्य

1.5.3.1.1 तात्कालिक उद्देश्य

भौतिक जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंध रखने के कारण गांधीजी शिक्षा के अनेक उद्देश्य मानते हैं । उनमें से प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं -

---

11. डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षाशास्त्री पृ. 436

1.5.3.1.1.1 जीविकोपार्जन

इस उद्देश्य का अर्थ यह है कि शिक्षा बालक को बड़े होने पर जीविकोपार्जन के योग्य बनाएँ । यदि हम भौतिक, नैतिक और मानसिक प्रगति चाहते हैं तो हमें मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति प्रथम करनी पड़ेगी । उनका कहना है - "शिक्षा को बालकों के बेरोजगारी के विरूद्ध एक प्रकार की सुरक्षा देनी चाहिए । 7 वर्ष का कोर्स समाप्त करने के बाद 14 वर्ष की आयु में बालक को कमाने वाले व्यक्ति के रूप में विद्यालय से बाहर भेजना चाहिए ।"[12] गांधीजी यह मानते हैं कि जो शिक्षा मुलभूत आवश्यकतों की पूर्ति नहीं करती वह शिक्षा व्यर्थ है ।

1.5.3.1.1.2 सांस्कृतिक उद्देश्य

गांधीजी भारतीय संस्कृति को आत्मा के विकास में सहायक मानते हैं । भारतीय संस्कृति नैतिकता का पाठ पढ़ाती है । हमें बोलने, बैठने, चलने, खाने, कपड़े पहनने आदि छोटे-से-छोटे कार्य एवं व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करना चाहिए । गांधीजी के अनुसार "....हिंदुस्थान के हितैषियों को चाहिए कि इस बात को समझकर उसी श्रद्धा के साथ भारतीय सभ्यता से चिपटे रहें जिस तरह कि बच्चा अपनी माँ की छाती से चिपटा रहता है ।" [13] भारतीय संस्कृति को शिक्षा के माध्यम से जीवित रखा जा सकता है क्योंकि शिक्षा ही अन्य अनेक माध्यमों में से एक सशक्त माध्यम है ।

1.5.3.1.1.3 बहुमुखी विकास

इस उद्देश्य का अर्थ यह है कि बालक की शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक शक्तियों का सर्वोतोमुखी विकास । शरीर-श्रम और स्वावलंबन से शारीरिक और मानसिक विकास होता है । प्रार्थना से मानव का अध्यात्मिक विकास होता है । मानव - जीवन का संपूर्ण विकास इन तीन बुनियादी तथ्यों पर आधारित है । तीनों तथ्य एक दूसरे पर आश्रित हैं । अत: पूर्ण मनुष्य का निर्माण इन तीन तत्त्वों के उचित और सामंजस्य पूर्ण विकास पर निर्भर है ।

1.5.3.1.1.4 चरित्र निर्माण

गांधीजी मुख्य रूप से 'चरित्र-निर्माण' को शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं । वे हृदय की संस्कृति और चरित्र-निर्माण को सदैव प्रथम स्थान देते हैं । एक बार उनसे पूछा गया कि ""जब भारत स्वतंत्र हो जाएगा, तब आपकी शिक्षा का क्या लक्ष्य होगा ?" उन्होंने फौरन ही उत्तर दिया 'चरित्र-निर्माण' ।""[14] गांधीजी ज्ञान की

---

12 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पृ. 462
13 (संपा) पं. रामनारायण उपाध्याय : गांधी विचार यात्रा, पृ. 96
14 डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, पृ. 46

उपयोगिता केवल चरित्र-निर्माण के लिए मानते हैं । उनके अनुसार व्यक्तिगत पवित्रता ही समस्त जीवन का आधार होना चाहिए ।

1.5.3.1.1.5 मुक्ति

गांधीजी शिक्षा का उद्‌देश्य मुक्ति भी मानते हैं । 'सा विद्या सा विमुक्तये' अर्थात शिक्षा या विद्‌या वही है जो मुक्त करती है । मनुष्य सामाजिक, मानसिक, राजनीतिक, आर्थिक, भौतिक आदि बेड़ियों में बंधा हुआ है । अत: जब तक वह इन बेड़ियों से मुक्त नहीं होता तब तक उसे मुक्ति संभव नहीं । अर्थात गांधीजी चाहते हैं कि मनुष्य शिक्षा द्‌वारा अपने - पराये की भावना से ऊपर उठें ।

1.5.3.1.2 शिक्षा का सर्वोच्य उद्‌देश्य

गांधीजी ईश्वर पर सबसे अधिक विश्वास रखते थे । उनका मानना था कि ईश्वर से एक क्षण भी विश्वास हट जाए तो मैं जीवित नहीं रह सकता । गांधीजी के शब्दों में " ... बगैर हवा और पानी के मैं भले ही जिन्दा रह जाऊँ, पर बगैर ईश्वर के मैं जिन्दा नहीं रह सकता ... ।"[15] शरीर की नश्वरता की अनुभूति ही अंतिम वास्तविकता है । आत्मानुभूति को गांधीजी केवल शिक्षा ही नहीं वरन जीवन का सारभूत तत्त्व मानते हैं । अर्थात सच्ची शिक्षा वही है जो आत्मानुभूति में सहायक होती है । शरीर की नश्वरता, ईश्वर पर दृढ़ विश्वास और आत्मानुभूति में सहायक बनना शिक्षा का अंतिम उद्‌देश्य है ।

1.5.3.1.3 बुनियादी शिक्षा पद्‌धति

गांधीजी के समग्र जीवन के तत्त्व बुनियादी शिक्षा पद्‌धति में एकत्रित हुए हैं । डरबन, जोहांसबर्ग, फिनिक्स, टाल्सटाय, शांति-निकेतन, साबरमती, गुजरात विद्‌यापीठ आदि के अनुभवों का निचोड़ बुनियादी शिक्षा पद्‌धति है । बुनियादी शिक्षा पद्‌धति की निम्नांकित विशेषताएँ हैं -

1.5.3.1.3.1 सात वर्षों तक बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा

गांधीजी ने यह महसूस किया था कि जब तक भारत की सभी जनता को शिक्षा का अवसर प्राप्त नहीं होगा तब तक देश में अशिक्षितों की संख्या बढ़ती ही रहेगी । उनका मानना था कि हम उच्च शिक्षा की समस्या को कुछ दिनों के लिए टाल सकते हैं किंतु प्राथमिक शिक्षा की समस्या को एक क्षण भी नहीं टाल सकते । जब तक शिक्षा अनिवार्य और नि:शुल्क नहीं की जाती तब तक देश का विकास असंभव है । अधिकांश भारतीय प्राथमिक शिक्षा का खर्च उठाने में भी असमर्थ हैं । अत: प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क और अनिवार्य होनी चाहिए ।

---

15 . (संपा) पं. रामनारायण उपाध्याय : गांधी विचार यात्रा, पृ. 61

1.5.3.1.3.2 मातृभाषा द्‍वारा शिक्षा

गांधीजी मातृभाषा में शिक्षा देने के पक्ष में थे । अँग्रेजी भाषा बालकों के लिए अपरिचित होने के कारण उनके विचारों में स्पष्टता नहीं आ सकती । गांधीजी अँग्रेजी का विरोध या तिरस्कार नहीं करते थे । उनके मतानुसार "मुझ में अँग्रेजी का या दूसरे पश्चिमी लोगों का द्‍वेष न कभी था न आज है ।... मेरा आग्रह हमेशा अँग्रेजी को उसकी योग्य जगह से बाहर न ले जाने का रहा है । वह कभी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती और न हमारी तालीम का जरिया ।"[16] अत: बालक अपनी मातृभाषा से जितना ज्ञानार्जन कर सकता है उतना किसी अन्य भाषा से नहीं । कठिन से कठिन सिद्‍धांतों को मातृभाषा में ही समझाया जा सकता है क्योंकि वह माँ के दूध के साथ सीखी जाती है ।

1.5.3.1.3.3 किसी मूल उद्‍योग के आधार पर शिक्षा

गांधीजी का मानना था कि कोई मूल उद्‍योग या हस्तकला (दस्तकारी) ही शिक्षा का केंद्र होना चाहिए । अत: यह आवश्यक है कि चुना हुआ उद्‍योग या हस्तकौशल बालक के भावी जीवन के लिए उपयोगी और शैक्षणिक हो, ताकि सीखा हुआ उद्‍योग जीवन निर्वाह का साधन बन जाए । इससे शारीरिक, मानसिक और बौद्‍धिक विकास सहज संभव है । गांधीजी का विचार था कि प्रत्येक राज्य को सात वर्षों तक बालकों की शिक्षा का भार उठाना चाहिए । सात वर्षों के बाद बालकों को परिवार का उत्पादक इकाई बनाकर भेजना चाहिए । इससे शिक्षा का व्यवहारिक रूप उभर सकेगा ।

1.5.3.1.3.4 समवायी शिक्षा

समवाय का शाब्दिक अर्थ है - 'परस्पर संबंध स्थापित करना ।' शिक्षा में समवाय का अर्थ है भिन्न विषयों में परस्पर संबंध स्थापित करके ज्ञान प्रदान करना । गांधीजी के अनुसार हस्तकला या दस्तकारी केवल व्यवसाय न बनें बल्कि अध्ययन अध्यापन के विषय बनें । उदा. 'कताई' । कताई उद्‍योग में भिन्न - भिन्न कपड़ों के लिए तरह तरह की रूई का चुनाव, कपास की खेती के लिए भूमि का चुनाव तथा मिट्टी का अध्ययन, कपास की उत्पत्ति के मौलिक कारणों की जाँच कपास की आयात और निर्यात देश - विदेश में कपास वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र, कपास आयात-निर्यात के मार्ग और साधन इ. जानकारी प्राप्त कर सकते हैं ।

इस प्रकार समवायी शिक्षा में गणित, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, साहित्य, कृषिशास्त्र इ. विषयों में परस्पर संबंध स्थापन करने की आवश्यकता है । समवायी शिक्षा से बालक का सर्वांगीण विकास होता है ।

---

16 . (संपा) पं. रामनारायण उपाध्याय : गांधी विचार यात्रा, पृ. 62

1.5.3.1.3.5 स्वावलंबी शिक्षा

गांधीजी 'स्वावलंबी शिक्षा' से देश को स्वावलंबी बनाना चाहते थे । विद्यालय में मूलोद्योग या हस्तकौशल द्वारा उत्पादित वस्तुओं को बेचकर विद्यालय का अधिकांश खर्च निकल आएगा । गांधीजी के अनुसार यह शिक्षा शिक्षकों पर अधिक निर्भर है । शिक्षक ही कच्चे माल का कम-से-कम नुकसान कर अच्छी वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं । गांधीजी का मानना था कि सात साल के अंत में बालकों को इस काबिल हो जाना चाहिए कि वे अपनी पढ़ाई का खर्च खुद अदा कर सकें और अपने परिवार के कमाऊँ पूत बनें । इससे बालक भविष्य में आनेवाली समस्याओं का सामना करने के लिए तैय्यार हो सकते हैं । यह शिक्षा अमीर, गरीब तथा सभी धर्मों के लिए समान है । गांधीजी मानते थे कि 'स्वावलंबी शिक्षा' ही सभी धर्मों का असली रूप है ।

1.5.3.1.4 बुनियादी शिक्षा पद्धति में शिक्षक

इस शिक्षा पद्धति के शिक्षकों में निम्नांकित गुण आवश्यक हैं -

(i) चरित्र संपन्न

(ii) स्वस्थ शरीर

(iii) शुद्ध शब्दोच्चारण / मधुर वाणी

(iv) अपने विषय का गहरा ज्ञान

(v) हिंदी साहित्य की विस्तृत जानकारी

(vi) अन्य विषयों का ज्ञान

(vii) साहित्यिक प्रवृत्ति

(viii) भावों और विचारों का सफल अभिव्यक्तिकरण

(ix) कलात्मकता का ज्ञान

(x) सृजन शक्ति

(xi) आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों का ज्ञान

(xii) दृश्य-श्रव्य साधनों आदि के प्रयोग में रूचि

(xiii) बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान

(xiv) प्रशिक्षण

(xv) मातृभाषा और हिंदी पर अधिकार

1.5.3.1.5 बुनियादी शिक्षा पद्धति में विद्यालय का रूप

बुनियादी शिक्षा पद्धति में विद्यालय का रूप आवासीय है । विद्यालय की इमारत में कक्षाओं के कमरे लगभग 600 वर्ग फुट क्षेत्रफल के होने चाहिए । उसमें एक ग्रंथालय होना चाहिए । 350 वर्ग फुट का एक कमरा हो जिसका उपयोग प्रदर्शनी सामूहिक प्रार्थना, तथा अन्य सामाजिक उत्सवों के लिए हो सकता है । आवश्यकता नुसार कुछ कक्षाएँ पेड़ के नीचे लगायी जा सकती हैं ।

विद्यालय के अहाते में छात्रावास तथा शिक्षकों के लिए आवास-गृह होने चाहिए । एक ऐसा बड़ा कमरा हो जिसमें रसोई घर तथा सामूहिक भोजन करने की सुविधा हो । सरकार की आर्थिक मदद तथा शिक्षक और छात्रों के श्रमदान से विद्यालय की मरम्मत की जाए । विद्यालय की 10-15 एकड़ जमीन हो । इस जमीन में बगीचा, खेल का मैदान और खेती हो । विद्यालय में प्रतिदिन की मुख्य खबरें श्यामपट पर लिखनी चाहिए । ग्रंथालय के लिए पुस्तकें चुनने में बालकों की राय लेनी चाहिए । नियमित रूप से मौसम तथा ऋतुओं का अवलोकन कर मौसम-तालिका भरनी चाहिए । महापुरूषों के जन्मदिन और पुण्यतिथियाँ मनाने चाहिए । विद्यालय और गाँव के संबंधों को बनाए रखने के लिए भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों के आयोजन करने चाहिए ।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहा जाता है कि बुनियादी शिक्षा पद्धति केवल आदर्शवादी नहीं है । वह जीविकोपार्जन को ध्यान में रखकर बनाई गई है । इसके साथ ही ईश्वर और आत्मानुभूति को शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य माना है । गांधीजी ने शिक्षकों को केंद्र बनाकर हस्तकला तथा मूलोद्योग की शिक्षा देने की जो व्यवस्था बताई है वह निश्चित ही आदर्श, सराहनीय और अनुकरण के योग्य है । वे 'स्वावलंबन' का महान उद्देश स्वयं के जीवन से और शिक्षा के माध्यम देना चाहते हैं । इस प्रकार आज भी गांधीजी के शिक्षा संबंधी विचार व्यवहार में उपयुक्त हो रहे हैं ।

1.5.4 महामना मदनमोहन मालवीय (1861-1946)

मदनमोहन मालवीय हिंदू संस्कृति के कट्टर समर्थक थे । वे शिक्षक, संपादक वकील और प्रभावशाली वक्ता भी थे । वे काव्य-सृजन और अभिनव कला में प्रवीण थे । उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना 4 फरवरी, 1916 में की थी । यह विश्वविद्यालय मालवीयजी के शैक्षणिक विचारों का मूर्तिमान प्रतीक है । यहाँ उन्होंने पूर्व और पश्चिम के श्रेष्ठतम ज्ञान का मधुरतम समन्वय किया है ।

मालवीय जी के शैक्षणिक विचार निम्नांकित हैं -

1.5.4.1 शिक्षा का लक्ष्य

मालवीय जी के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य इस प्रकार हैं -

(i) आदर्श मानव का निर्माण

(ii) राष्ट्रीय शिक्षा

(iii) नैतिक शिक्षा

(iv) शारीरिक शिक्षा

(v) प्राचीन शिक्षा का प्रचार

(vi) स्त्री-शिक्षा

(vii) शिक्षा का माध्यम

उपर्युक्त लक्ष्यों का विश्लेषण इस प्रकार कर सकते हैं -

1.5.4.1.1 आदर्श मानव का निर्माण

मालवीयजी शिक्षा के द्‌वारा आदर्श मानव की कल्पना करते थे । आदर्श मानव अर्थात जाति-पाँति, अपना-पराया, स्वार्थ, हिंसा आदि वृत्तियों से ऊपर उठने वाला । मालवीयजी संकीर्ण विचारों को दूर हटाकर विशाल विचारों की अपेक्षा रखते थे । उनका मानना था कि शिक्षा के माध्यम से नागरिकों को कर्तव्यों के प्रति सजग रखा जा सकता है । अत: प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहा तो देश की उन्नति सहज और स्वाभाविक रूप से होगी इसमें संदेह नहीं ।

1.5.4.1.2 राष्ट्रीय शिक्षा

मालवीयजी शिक्षा का लक्ष्य राष्ट्रभक्ति भी मानते हैं । मालवीयजी राष्ट्रीज शिक्षा के संदर्भ में कहते हैं ''जो शिक्षा पद्‌धति देश के अंतर्भाग से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है तथा अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियों, समस्याओं, आवश्यकताओं, आदर्शों तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के अनुरूप विकसित होती है, वही राष्टीय शिक्षा है ।''[17] वे इस पद्‌धति से सामान्य लोगों तक राष्ट्रीय यथार्थ को पहुँचाना चाहते थे । राष्ट्रीय शिक्षा से मानवीय कल्पना और विचारों को प्रात्साहन मिलेगा । अत: प्रत्येक बालक राष्ट्रीय उन्नति में अपना योगदान देगा । इससे मालवीयजी की दूरदृष्टि स्पष्ट नजर आती है ।

1.5.4.1.3 नैतिक शिक्षा

नैतिकता मनुष्य की उन्नति का आधारस्तंभ है । नैतिकता के अभाव में कोई भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र अवश्य पतोन्मुख हो जाएगा । मालवीयजी नैतिक शिक्षा को बहुत प्रश्रय देते थे । वे नैतिकता विद्‌यार्थियों के लिए एक आवश्यक गुण मानते थे । उनका मानना था कि नैतिक शिक्षा केवल चरित्र संपन्न अध्यापकों से ही दी जा सकती है । जो चरित्र-संपन्न है वही धर्म और राष्ट्र की रक्षा कर सकता है । उनका विश्वास था कि जो

---

17. डॉ. बैद्यनाथ प्रसाद वर्मा - विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, पृ. 388

व्यक्ति विद्या और तप से विहीन होता है, वह कालांतर में दुराचारी होता है । अर्थात नैतिकता के लिए प्रयत्न और कष्ट उटाने की क्षमता आवश्यक है । अत: मालवीयजी यही अपेक्षा शिक्षा से रखते थें ।

1.5.4.1.4 शारीरिक शिक्षा

मालवीयजी नैतिक शिक्षा के साथ ही शारीरिक शिक्षा के संदर्भ में भी सतर्क थे । उनका मानना था कि यदि स्वास्थ ही ठीक न रहा तो अधिक ज्ञानार्जन कोई महत्त्व नहीं रखता । मालवीयजी स्वयं अच्छे मल्ल थे । उन्होंने शारीरिक स्वास्थ के महत्त्व को जानकर हिंदू विश्वविद्यालय के शिवाजी भवन में मल्लशाला स्थापित की थी । वे स्वयं प्रात: भ्रमण, व्यायाम और तेल मालिश किया करते थे । सन 1907 में प्रकाशित एक लेख में उन्होंने लिखा है - ''अनुभव से मुझे मालूम हुआ है कि स्वास्थ की रक्षा और शक्ति के लिए पहला ध्यान छाती पर देना चाहिए ।[18] वे विश्वविद्यालय के निर्बल छात्रों को पौष्टिक भोजन, सदाचार और व्यायाम का उपदेश देते थें । वे स्वयं विश्वविद्यालय के छात्रावास में जाकर छात्रों के आरोग्य की जानकारी लेते थे ।

1.5.4.1.5 प्राचीन शिक्षा का प्रसार

मालवीयजी शिक्षा के माध्यम से प्राचीन भारतीय संस्कृति को भारतवासियों के सामने रखना चाहते थे । वे प्राचीन संस्कृति के प्रेमी होने के कारण उन्हें वेद, पुरान, उपनिषद, स्मृति, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक ग्रंथों पर गर्व था । उनका मत था कि प्रत्येक विद्यार्थी को पहले अपने साहित्य के अध्ययन में पारंगत होने पर ही अन्य देशों का अध्ययन करना चाहिए । वे प्राचीन संस्कृति में विद्यार्थियों को फलता - फूलता देखना चाहते थे । वे चिकित्सा के क्षेत्र में आयुर्वेदिक चिकित्सा - व्यवस्था को अधिक लाभप्रद समझते थे । उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में आयुर्वेदिक चिकित्सा के साथ - साथ शल्य - चिकित्सा का ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था की थी ।

1.5.4.1.6 स्त्री - शिक्षा

मालवीयजी नारी शिक्षा के समर्थक थे । उनका मानना था कि भारत में जब तक स्त्री शिक्षा का प्रचार और प्रसार नहीं होगा, तब तक हमारी उन्नति असंभव है । इससे ज्ञात होता है कि वे स्त्री शिक्षा और भारत के भविष्य के संदर्भ में कितने चिंतित थे । मालवीयजी का मानना था कि पाठ्यक्रम में व्यवहारिकता की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए । पाठ्यक्रम में उन विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो स्त्रियों को कुशल गृहणी बना सकें ।

स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार में मालवीयजी के निम्नांकित विचार हैं -

---

18 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पृ. 393

(i) देश में स्त्रियों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए ।

(ii) देहातों में 'बालिका विद्यालयों' की स्थापना करनी चाहिए ।

(iii) 'बालिका विद्यालयों' में केवल स्त्री अध्यापकों की नियुक्ति करनी चाहिए ।

(iv) प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षिकाओं के वेतन को विशेष आकर्षक बनाना चाहिए । साथ ही शिक्षिकाओं के निवास की व्यवस्था भी करनी चाहिए ।

(v) स्त्रियों की मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम बनाया जाए ।

(vi) स्त्रियों को शिक्षा की ओर आकर्षित करने के लिए छात्र-वृत्ति की योजना लागू करनी चाहिए ।

(vii) प्रौढ़ स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए विशेष अध्यापिकाओं की नियुक्ति करनी चाहिए ।

1.5.4.1.7 शिक्षा का माध्यम :

मालवीजयी हिंदी को मातृभाषा स्वीकार करते थे । वे हिंदी के संदर्भ में कहते हैं "भविष्य में हिंदुस्थान की उन्नति हिंदी को अपनाने से ही हो सकती है ।"[19] मालवीयजी के प्रयत्नों के कारण ही उत्तर प्रदेश की अदालत में हिंदी को स्थान मिला । इनके समय अँग्रेजी का बोलबाला था । अत: वे जानते थे कि विज्ञान एवं शिल्प कलाओं के बिना भारत की उन्नति संभव नहीं । इसलिए उन्होंने विदेशी भाषाओं में प्रकाशित वैज्ञानिक, प्रविधिक तथा शिल्प-संबंधी पुस्तकों के अनुवाद की व्यवस्था की थी । प्रशासनिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं व्यवसायिक महत्त्व को लक्ष्य करके ही उन्होंने हिंदी को मातृभाषा के रूप में अपनाया था । वे हिंदी को ही शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे ।

1.5.4.2 धार्मिक शिक्षा

मालवीयजी नैतिक चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास के लिए धार्मिक शिक्षा देना चाहते थे । उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना धर्म के आधार पर ही की थी । वे चाहते थे कि प्रत्येक हिंदू बालक ब्रह्मचर्य - व्रत धारण करके विद्याभ्यास करें । ब्रह्मचर्य के कारण बल और तेज बढ़ता है और धार्मिक वृत्ति विकसित होती है । वे महापुरूषों के जीवनी के माध्यम से धार्मिक शिक्षा देना चाहते थे ताकि छात्रों में संयम, वीरता, विनय, श्रद्धा आदि गुण विकसित हो ।

1.5.4.3 विद्यार्थियों के प्रति

मालवीयजी विद्यार्थियों को भारत-माता के रक्षक मानते थें । मालवीयजी विद्यार्थियों के बारे में कहते हैं "सामान्य दशा में विद्या का अभ्यास करना, चरित्र को पुष्ट करना, देश के हित और अनहित की बातों का

---

19 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, पृ. 407

ज्ञान सब प्रकार से बढ़ाना तथा अपनी बुद्धी, वाणी एवं शरीर को पुष्ट करना ।'' [20] मालवीयजी के अनुसार विद्यार्थियों का उत्तरदायित्त्व यह है कि वे अपने नियमित अध्ययन से समय बचाकर अपने देश का इतिहास, धर्म, पूर्वजों के चरित्र, समाचार पत्र, नियतकालिका और दूसरे देशों के इतिहास को भी पढ़े । उनका मानना था कि विद्यार्थी जीवन में किया हुआ अध्ययन ही भविष्य में प्रतिष्ठित नागरिक बनने में सहायक होगा ।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहा जाता है कि मालवीयजी शिक्षा के माध्यम से आदर्श मानव का निर्माण करना चाहते हैं । वे आदर्श मानव बनने के लिए नैतिक शिक्षा और शारीरिक शिक्षा पर बल देते हैं । वे आधुनिक विचारधारा के होते हुए भी प्राचीन परंपरा को भी शिक्षा में स्थान देना चाहते हैं । अत: उनके स्त्री शिक्षा संबंधी विचार विशेष उल्लेखनीय हैं ।

1.5.5 स्वामी दयानंद सरस्वती

महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती भारतीय समाज की अलौकिक विभूति थे । आप 'आर्य समाज' के संस्थापक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं । आपने हिंदू धर्म को परंपरागत रूढ़िवादी विचार धाराओं से मुक्त करने हेतु 1875 में मुंबई में 'आर्य समाज' की स्थापना की थी।

स्वामी दयानंद सरस्वती के शिक्षा संबंधी विचार निम्नांकित हैं -

1.5.5.1 वैदिक शिक्षा पर बल

स्वामी दयानंद सरस्वती के शिक्षा दर्शन का मूल आधार चार वेद हैं । इनका सुप्रसिद्ध नारा था 'वेदों की ओर लौटें ।' स्वामीजी शिक्षा की परिभाषा करते हुए कहते हैं - ''शिक्षा उसे कहते हैं जिससे विद्या सभ्यता, धर्मात्मायन और जितेंद्रियता आदि सदगुणों का प्रस्फुटन हो तथा अविद्या का नाश हो ।'' [21] स्वामीजी का मानना था कि वेदों में जो सोलह संस्कार बताए गए हैं उनका पालन करना चाहिए क्योंकि उससे शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक उन्नति होती है ।

1.5.5.2 चरित्र निर्माण

स्वामी दयानंदजी के अनुसार शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य चरित्र-निर्माण है । उनके अनुसार ''मनुष्य का चरित्र उसके विभिन्न कार्यों और इच्छाओं की समष्टि, उसके मान के समस्त झुकाओं का योग है । सुख और दु:ख उसकी आत्मा पर होकर क्रमश: जिस प्रकार जिस प्रकार धारावाहित होते हैं, वे उस पर अपनी छाप तथा

---

20 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, पृ. 370

21 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, पृ. 261

संस्कार छोड़ जाते हैं । इन विभिन्न छापों की समष्टि का फल ही मनुष्य का चरित्र है ।"[22] बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में ही चरित्र निर्माण की नींव डाली जा सकती है । इस काल में बालक का सर्वाधिक संपर्क माता-पिता और शिक्षकों से होता है । इसी कारण दयानंदजी अभिभावकों और शिक्षकों को सचेत रहने के लिए कहते हैं । इस अवस्था में किए गए संस्कार ही जीवन में सहायक सिद्ध होते हैं । इसलिए वे गायत्री मंत्र, प्राणायम और योगाभ्यास के अध्ययन पर बल देते हैं ।

1.5.5.3 सादा जीवन उच्च विचार

स्वामीजी भारतीय संस्कृति के उपासक होने के कारण इस सिद्धांत पर बल देते हैं । उनके अनुसार 'सादा जीवन उच्च विचार' ही शिक्षा का मुख्य आदर्श है । अर्थात विद्यार्थियों ने धन-संग्रह, शारीरिक सुख और विलासिता से दूर रहना चाहिए । विद्यार्थियों के खान-पान, आचार-विचार, वेश-भूषा, में समानता तभी आ सकती है जब वे इस सिद्धांत को आचरण में उतारेंगे । यह सिद्धांत केवल विद्यार्थियों तक सीमित न होकर शिक्षकों और अभिभावकों ने भी इसका पालन करना आवश्यक है । इसमें संदेह नहीं कि इस सिद्धांत से ही देश की उन्नति और अनुशासन बना रहेगा ।

1.5.5.4 गुरूकुल प्रणाली का समर्थन

स्वामी दयानंद सरस्वती गुरूकुल शिक्षा प्रणाली के आदर्श को अपनाने पर बल देते हैं क्योंकि -

(i) गुरूकुल में छात्र परिवार के सदस्य के रूप में शिक्षा पाते थे ।

(ii) गुरू-शिष्य संबंध अत्यंत मधुर थे ।

(iii) अमीर तथा गरीब सभी छात्रों को समान रूप से शिक्षा दी जाती थी ।

(iv) छात्रों की संख्या सीमित होने के कारण व्यक्तिगत ध्यान देना संभव था ।

(v) छात्रों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और सामाजिक विकास पर बल दिया जाता था ।

(vi) गुरू चरित्र संपन्न थे । अत: छात्र भी चरित्र संपन्न निर्माण होते थे ।

(vii) 'सादा जीवन उच्च विचार' सिद्धांत का पालन किया जाता था ।

(viii) एकांत एवं शांति का वातावरण था ।

(ix) स्वावलंबी शिक्षा दी जाती थी ।

---

22 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, पृ. 272

स्वामीजी को विश्वास था कि गुरूकुल द्वारा ही विद्यार्थियों का बहुमुखी विकास संभव है । अत: इसी प्रणाली को आदर्श मानकर आर्य समाज द्वारा हरद्वार, वृंदावन, देहरादून तथा बड़ौदा गुरूकुलों की स्थापना की गई ।

1.5.5.5 अध्ययन की व्यवस्था

स्वामीजी के अनुसार अध्ययन की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए -

(i) सर्व प्रथम बालक को माता-पिता या गुरू द्वारा पाणिनी के ध्वनि-सिद्धांत की शिक्षा देनी चाहिए । उसके शुद्ध उच्चारण के प्रति सदैव जागरूक रहना चाहिए ।

(ii) तदुपरांत तीन वर्ष तक व्याकरण की शिक्षा दी जाए । जिसके अंतर्गत पाणिनी और पतंजलि के अष्टाध्यायी, धातुपथ, गणपथ, आनाद्विकोश और महाभाष्य सम्मिलित है ।

(iii) व्याकरण की शिक्षा के उपरांत छात्र के छह से आठ मास तक यास्क द्वारा रचित निघंटु और निरूक्त की शिक्षा देनी चाहिए ।

(iv) इसके बाद चार मास के अंतर्गत ही विद्यार्थी को छंदशास्त्र की शिक्षा देनी चाहिए । ग्रंथ पिंगल के अनुसार कविता को नियंत्रित करने वाले नियमों को ज्ञात करना चाहिए ।

(v) फिर एक वर्ष के अंतर्गत ही मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, विदुरनीति और महाभारत के विशिष्ट अंशों का अध्ययन करा दिया जाय ।

(vi) इसके पश्चात् विद्यार्थियों को छह शास्त्रों का उनके प्राचीन सिद्ध पुरूष ऋषियों द्वारा की गई व्याख्या सहित अध्ययन कराना चाहिए । वेदांत के अध्ययन में दो वर्ष का समय लगाना चाहिए ।

(vii) तत्पश्चात विद्यार्थी वेदों का चार ब्राह्मणों (ऐत्तरेय, शतपथ, सम और गोपथ) के साथ अध्ययन करें । इसके अध्ययन में उच्चारण एवं अर्थ का विशेष ध्यान रखा जाए । इस अध्ययन में छह वर्ष से अधिक समय लगना चाहिए ।

(viii) वेदों के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी उपवेदों का अध्ययन करें । उपवेद चार हैं - आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद, अथर्ववेद ।

(ix) उपवेदों के अध्ययन के पश्चात ज्योतिषशास्त्र का भी अध्ययन करना चाहिए । ज्योतिषशास्त्र के अंतर्गत गणित, बीजगणित, रेखागणित, भूगोल, नक्षत्र-शास्त्र, खगोलशास्त्र आदि सम्मिलित हैं । यह अध्ययन दो वर्ष के अंतर्गत होना चाहिए ।

इस प्रकार स्वामीजी बीस-बाईस वर्ष की अवस्था तक अध्ययन काल मानते हैं । स्वामीजी चाहते थे कि अध्ययन काल में छात्र बुरे व्यक्तियों की संगति न करें । विवाह न करें । अधिक, भोजन न करें । देर तक रात्रि में न जागें ।

1.5.5.6 सह - शिक्षा

स्वामीजी स्त्री-शिक्षा के समर्थक थे । उनका मत था कि बालिकाएँ ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं । किंतु वे सह-शिक्षा के विरोधी थे । उनके अनुसार बालक-बालिकाओं के विद्यालय की दूरी प्राय: छह मील होनी चाहिए । पुरुष विद्यालय में स्त्री अध्यापिका का होना उन्हें अमान्य था । वस्तुत: वे चाहते थे कि बालक - बालिकाएँ मनसा, वाचा, कर्मणा से अखंड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें । ब्रह्मचर्य व्रत में उन्होंने अलौकिक चमत्कार देखा था । इसलिए वे सह-शिक्षा के विरोधी थे ।

1.5.5.7 शरीर - स्वस्थ

भारतीय शास्त्र मंडुकोपनिषद का वाक्य है 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम् ।' अर्थात धर्म की साधना के लिए पुष्ट बलवान और स्वास्थ शरीर की आवश्यकता है । स्वामीजी का भी यही मानना था कि स्वस्थ शरीरयुक्त ब्रह्मचारी नौजवान ही भारतमाता की रक्षा कर सकेगा । धार्मिक जीवन भी वही बिता सकेगा, जो शरीर से स्वस्थ है । अत: स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा का वास होता है ।

निष्कर्ष :

कालानुरूप शिक्षा के स्वरूप में बदलाव आने के कारण स्वामीजी की वैदिक शिक्षा आज अनुपयुक्त सिद्ध होगी । सरस्वतीजी का सह-शिक्षा का विरोध आज स्वीकार नहीं किया जाएगा । लेकिन सादा जीवन उच्च विचार, गुरूकुल प्रणाली, चरित्र संबंधी विचार अत्यंत उपयुक्त हैं । अत: इन विचारों को आचरण में उतारने की आवश्यकता है ।

1.5.6 रवींद्रनाथ ठाकुर (1867-1941)

नोबल पुरस्कार प्राप्त विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर लेखक, दार्शनिक कलाकार, चित्रशिल्पी, संगीतज्ञ, नाटककार और शिक्षाशास्त्री थे । उन्होंने निरीक्षण और अनुभव के आधारपर शिक्षा के संबंध में मौलिक विचारों को व्यक्त किया है । उनके दवारा 1901 में बेलापर के निकट 'विश्वभारती' की स्थापना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण

निर्माण करने में निहित है ।'' [23] अर्थात वे ज्ञान को व्यवहार में प्रयुक्त करने पर बल देते हैं और उसका उपयोग जीवन निर्वाह के लिए भी आवश्यक मानते हैं ।

1.5.6.1 शिक्षा के उद्‌देश्य

रवींद्रनाथजी द्‌वारा प्रतिपादित शिक्षा के मूल उद्‌देश्यों को इस प्रकार रख सकते हैं -

(I) शिक्षा का मूल उद्‌देश है सामंजस्य और समन्वय का निर्माण करना ।

(II) शिक्षा के माध्यम से केवल तथ्यों को या ज्ञान को एकत्रित करना नहीं, बल्कि उसे समाज के सामने व्यक्त करना ।

(III) बालकों का शारीरिक विकास ।

(IV) बालकों का सर्वांगीण विकास के लिए उसे वास्तविक जीवन का परिचय और पर्यावरण की जानकारी देनी चाहिए ।

(V) भारतीय संस्कृति की शाश्वत विचारधाराओं की स्पष्ट और मनोवैज्ञानिक ढंग से धीरे-धीरे जानकारी देनी चाहिए ।

(VI) छात्रों को अनैतिकता से दूर रखकर ग्रामीण परिवेश में शिक्षा देनी चाहिए ।

(VII) बालकों की सौंदर्यानुभूति विकास के लिए संगीत, चित्रकला और अभिनय का ज्ञान देना चाहिए ।

(VIII) शिक्षा द्‌वारा राष्ट्रीय चेतना जागृत होनी चाहिए ।

(IX) मातृभाषा द्‌वारा शिक्षा देनी चाहिए ।

(X) शिक्षा के माध्यम से नैतिकता की नींव डालनी चाहिए ।

(XI) जन-शिक्षा पर अधिक लक्ष्य केंद्रित करना चाहिए ।

उपर्युक्त उद्‌देश्यों में से कुछ उद्‌देश्यों का विश्लेषण इस तरह कर सकते हैं -

1.5.6.2 चरित्र निर्माण

रवींद्रनाथजी का मानना था कि चरित्र गठन केवल पुस्तकों से नहीं होता बल्कि वह अनुकरण से होता है । इसलिए शिक्षा जगत में चरित्र संपन्न शिक्षक चाहिए ताकि छात्र उनका अनुकरण कर सकें । अनुशासन बद्‌ध जीवन के माध्यम से चरित्र निर्माण होता है ।

---

23 . हरिराम जसटा - आधुनिक भारत में शैक्षिक चिंतन, पृ. 66

1.5.6.3 प्रकृति में शिक्षा

रवींद्रनाथजी स्वयं प्रकृति प्रेमी थे । जिस प्रकार गांधीजी ने 'गाँव की ओर लौटें' (Back to Nature) का नारा लगाया था । उसी प्रकार रवींद्रनाथजी ने 'प्रकृति की ओर लौटे' का नारा लगाया था । वे प्रकृति को सादगी और सौंदर्य का प्रतीक मानते थे । प्रकृति में ही बालक का स्वाभाविक विकास होता है । इसलिए वे 'विश्वभारती' में बालकों को प्रकृति की खुली गोद में पढ़ाते थें । वे बालकों को खुले पैरों घुमने के लिए कहते थें । रवींद्रनाथजी के अनुसार "हमारी आदर्श शिक्षण-संस्थाओं का निर्माण शहरी कोलाहल से दूर देहातों के स्वच्छ और पवित्र वातावरण में वृक्षों की छाया में होगा, जहाँ शिक्षक और शिष्य दोनों शांतिपूर्वक अध्ययन-अध्यापन कर सकेंगे ।"[24] प्रकृति की खुली गोद में बालक कठिन से कठिन सिद्धांत को भी सहज समझ सकता है । बालकों की शारीरिक मानसिक और बौद्धिक शक्ति का विकास भी स्वाभाविक रूप से होता है । ठाकुरजी के इस सिद्धांत को आज के मनावैज्ञानिक भी मान्यता देते हैं ।

1.5.6.4 धार्मिक शिक्षा

रवींद्रनाथजी मानसिक, नैतिक और अध्यात्मिक विकास के लिए धार्मिक शिक्षा आवश्यक मानते हैं । किंतु धार्मिक संकीर्णता उन्हें अमान्य थी । वे धार्मिक शिक्षा द्वारा विश्व बंधुत्त्व की भावना का विकास चाहते थें । धर्म मानव-जीवन का अभिन्न अंग है। धार्मिक शिक्षा केवल व्याख्यान या उपदेश के द्वारा नहीं दी जा सकती, बल्कि उसे सादगीपूर्ण जीवन, उचित वातावरण और आचरण से दी जा सकती है ।

1.5.6.5 स्वावलंबी शिक्षा

रवींद्रनाथजी के अनुसार विद्यालयों में शिशुकाल से ही ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिसमें विद्यार्थी स्वावलंबी बनें । वे कहते हैं " यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि दैहिक तथा मानसिक शिक्षा में निकट का संबंध है, जब इन दोनों में समुचित सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता, तो हमारे जीवन का संतुलन ही भंग हो जाता है ।"[25] मानसिक और दैहिक शिक्षा में संबंध स्थापित करना है तो स्वावलंबी शिक्षा ही आवश्यक है । उन्होंने 'विश्वभारती' में ग्रामोन्नयन, गोपालन, बढ़ईगिरी, शिल्पकारी, सफाई, कृषि संबंधी आदि की शिक्षा देने की व्यवस्था की थी ।

1.5.6.6 मातृभाषा द्वारा शिक्षा

रवींद्रनाथजी मातृभाषा में ही शिक्षा देने के पक्ष में थे । मातृभाषा माँ के दूध के साथ सीखी जाती है । इस भाषा में दी गई शिक्षा अधिक प्रभावशाली और स्वाभाविक होती है । कठिन से कठिन सिद्धांतों को भी

---

24 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा : विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पृ. 332
25 . डॉ. इंद्रा ग्रोवर - संसार के महान शिक्षाशास्त्री, पृ. 203

मातृभाषा में सहज समझाया जा सकता है । रवींद्रनाथजी के अनुसार " ... विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा विश्व के किसी भी सभ्य देश में नहीं प्रदान की जाती । इससे छात्रों का मन विकारग्रस्त हो जाता है और वे अपने ही देश में परदेशी के समान मालून पड़ते हैं ।"[26] रवींद्रनाथजी अँग्रेजी की उपेक्षा नहीं करते बल्कि वे विज्ञान तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए अँग्रेजी का अध्ययन आवश्यक मानते हैं ।

1.5.6.7 शिक्षकों के प्रति

शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । उनके हाथों में देश का भविष्य होता है क्योंकि वे ही देश के भविष्य की नींव डालते हैं । शिक्षकों के बारे में रवींद्रनाथजी का कथन है "वे ही शिक्षक होने के उपयुक्त हैं, जो धैर्यवान हैं । छात्रों के प्रति स्वभावत: जिन्हें प्रेम है, स्नेह है, अत: शिक्षा दान के लिए ऐसे शिक्षक चाहिए, जो इस आदर्श को जीवन में उतार सकें ।"[27] शिक्षक की ऐसी कोई कृति नहीं होनी चाहिए जिससे बालक की रचनात्मक शक्ति में अवरोध निर्माण हो । शिक्षक को शिक्षण विधि में विश्वास न करके सत्य, प्रेम और जीवन के सिद्धांतों में विश्वास करना चाहिए । अत: वे चरित्र-संपन्न, क्षमाशील और कर्तव्य दक्ष होने चाहिए ।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहा जाता है कि रवींद्रनाथ ठाकुरजी द्वारा बताए गए शैक्षणिक विचार आज भी शिक्षा - व्यवस्था में आदर्श माने जाते हैं । वे छात्रों को केवल पुस्तकीय ज्ञान देना नहीं चाहते बल्कि उनके बहुमुखी विकास के लिए स्वावलंबी शिक्षा का समर्थन भी करते थें । वे मातृभाषा में शिक्षा देना अधिक पसंद करते हैं । वे शिक्षा में अध्यात्म का समावेश कर विश्वबंधुत्व की भावना का विकास करना चाहते थें ।

1.6 वर्तमान भारतीय शिक्षा-नीति का स्वरूप :

ब्रिटिशों ने भारतीय जनता की शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया था । वे केवल बाबुओं को निर्माण करना चाहते थे । इसलिए स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत सरकार ने शिक्षा की पुनर्रचना के लिए विभिन्न आयोगों की स्थापना की । जैसे राधाकृष्ण आयोग, मुदलियार आयोग, कोठारी आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, ईश्वरभाई पटेल समिती आदि । इन आयोगों ने शिक्षा की विभिन्न चुनौतियों को स्वीकार कर समाज की आवश्यकतानुसार शिक्षा की पुनर्रचना करने का प्रयास किया । नवीन चुनौतियों तथा सामाजिक आवश्यकताओं से निपटने के लिए भारत सरकार ने एक नई शिक्षा-नीति तैयार की जो सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के नाम से प्रसिद्ध है ।

राष्टीय शिक्षा नीति, 1986 की कुछ प्रमुख बाते इस प्रकार है -

---

26 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा - विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पृ. 335
27 . डॉ. वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा - विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पृ. 334

(I) "... एक निश्चित स्तर तक प्रत्येक विद्यार्थी को बिना किसी जाति-पाँत, धर्म, स्थान या लिंग भेद के लगभग एक जैसी अच्छी शिक्षा उपलब्ध हो ।

(II) राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के अंतर्गत सम्पूर्ण देश के लिए 10 + 2 + 3 की संरचना को स्वीकार किया गया है ।

(III) नवीन शिक्षा - प्रणाली आनेवाली सन्तति में विश्वव्यापी दृष्टिकोण को सदृढ़ बनाने, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना का विकास करें ।

(IV) देश में सम्पर्क भाषा को बढ़ावा देने के लिए प्रयास किया जायेगा ।

(V) आजीवन शिक्षा शैक्षिक प्रक्रिया का मूलभूत लक्ष्य है और सार्वजनीक साक्षरता उसका अभिन्न अंग । युवा वर्ग, गृहणियों, किसानों, मजदूरों, व्यापारियों आदि को अपनी पसन्द व सुविधा के अनुसार अपनी शिक्षा जारी रखने के अवसर प्रदान किये जायेंगे । इसलिए भविष्य में खुली शिक्षा (Open Education) तथा दूरस्थ शिक्षण (Distance Learning) राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के महत्त्वपूर्ण अंग होंगे ।

(VI) शिक्षा के पुनर्निमाण के लिए, शिक्षा में असमानताओं को कम करने के लिए प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए, प्रौढ़ साक्षरता के लिए, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान के लिए इस प्रकार के अन्य लक्ष्यों के लिए साधन जुटाने का दायित्व समूचे राष्ट्र पर होगा ।"[28]

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि डॉ. राधाकृष्णन, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, महामना मदनमोहन मालवीय, स्वामी दयानंद सरस्वती और रवींद्रनाथ ठाकुरजी 'नैतिक' और 'धार्मिक शिक्षा' को शिक्षा की नींव मानते हैं । रवींद्रनाथजी बालकों को प्रकृति में शिक्षा देने के पक्ष में थे । सभी विद्वान 'मातृभाषा में शिक्षा' के समर्थक हैं । 'नारी - शिक्षा' का सब विद्वान समर्थन करते हैं किंतु स्वामी दयानंद सरस्वतीजी 'सह शिक्षा' का विरोध करते हैं । मुझे इन सब विद्वानों में से महात्माजी के विचार अधिक प्रभावी एवं व्यवहारिक लगते हैं क्योंकि वे यथार्थ और अनुभव पर आधारित हैं । महात्माजी और रवींद्रनाथजी द्वारा बताए गए शिक्षकों के कर्तव्य भविष्य में भी शिक्षकों का पथप्रदर्शन करेंगे इसमें संदेह नहीं । संक्षेप में सभी भारतीय विद्वान बालक का चरित्र-निर्माण के साथ साथ उसका बहुमुखी विकास चाहते हैं । 'वर्तमान भारतीय शिक्षा-नीति का स्वरूप' के अंतर्गत भी जाँति-पाँति और लिंग-भेद को स्थान नहीं दिया है । खुली शिक्षा और दूरस्थ शिक्षण द्वारा

---

28 . जी. एस. डी. त्यागी एवं पी. डी. पाठक - भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ, पृ. 10, 11

मजदूरों, गृहिणियों, किसानों और व्यापारियों को शिक्षा के अवसर प्रदान किए जाने का प्रयास किया है । अतः यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।